साहित्य सृजन एवं भाषा सुदृढ़ आधार

* डॉ. सुशीला सारस्वत

सारांश

इक्कीसवीं सदी के इस युग में एवं भूमण्डलीकरण के इस दौर में समस्त क्षेत्रों में बहुत तेजी के साथ परिवर्तन हो रहा है। आधुनिक सभ्यता, संस्कृति, साहित्य एवं भाषा के सामने भी नई–नई चुनौतियां आ रही हैं। आज साहित्य अपने मूल लक्ष्य से भटकता दिखायी दे रहा है। कालजयी रचनाकार एवं रचनाएं मिलना मुश्किल–सा हो गया है। भले ही आज भाषा का क्षेत्र विस्तृत हुआ हो लेकिन सर्वग्राह्य भाषा का अभाव दिख रहा है। समाज के प्रत्येक क्षेत्र में अंधानुकरण की प्रवृत्ति बढ़ी है। इक्कीसवीं सदी में साहित्य और भाषा की समस्या एवं समाधान को इस शोध पत्र में खोजने का प्रयास किया गया है।

कूट शब्द– आधुनिकता, भूमण्डलीकरण, सभ्यता, संस्कृति, साहित्य, भाषा, सर्वग्राह्यता, अभिव्यक्ति।

प्रस्तावना

साहित्य के बिना मनुष्य का जीवन अधूरा है। साहित्य से ही समाज में जागरूकता फैलती है। साहित्य सृजन के लिए उसके अनुरूप भाषा का होना अति आवश्यक है। भाषा ही और भाषा का लेखन यह मनुष्य को परस्पर जोड़ता है। भाषा ही भावों की जनक होती है। अतः भाषा का साहित्य सृजन के लिए सुदृढ़ होना परम आवश्यक है। भाषा भावों में ढलकर साहित्य का जब सृजन करती है तो वह साहित्य अमर फल देने वाला होता है। कवि गण हमेशा इस बात का ध्यान रखते हैं कि वह अपनी लेखनी से ऐसा लेखन करें जो चिरंजीवी हो। समाज में अपनी छाप छोड़े। साहित्य सृजन के लिए हिंदी के कवियों ने सदैव अपनी सशक्त लेखनी का प्रयोग किया। भारत की महिमा हो, देश की गरिमा का गान हो, वीर सैनिकों का गुणगान हो सभी में भाषा का महत्व रहता है।

किसी भी देश की बाह्य एवं आंतरिक स्थिति को जानने एवं समझने के लिए उस देश की सभ्यता एवं संस्कृति को जानना आवश्यक होता है। सभ्यता एवं संस्कृति को जानने का माध्यम उस देश की भाषा होती है। भाषा का प्रवाह पुरातनता से आधुनिकता की ओर जाता है। इक्कीसवीं सदीं के इस आधुनिक समाज में आधुनिकता के लक्षण तो आ गये हैं, लेकिन वह अपनी वास्तविक स्थिति से कोशों दूर है।

आधुनिकता रूढ़ि परम्परा पर चलने वाली प्रक्रिया नहीं है अपितु वह उससे हटकर एक नवीन मार्ग का अनुसरण करती है। रामधारी सिंह 'दिनकर' ने आधुनिकता को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि– "आधुनिकता अन्धविश्वास से बाहर निकलने, नैतिकता में उदारता बरतने और बुद्धिवादी बनने की प्रक्रिया है।"[1] इस प्रकार आधुनिकता का संबंध ज्ञान–विज्ञान के फलस्वरूप पुरातन तथा परंपरागत विचारों एवं मूल्यों, धार्मिक–विश्वासों और रूढ़िगत रीति–रिवाजों के विरूद्ध नवीन और वैज्ञानिक आविष्कारों, विचारों एवं नये मूल्यों से है। आधुनिकता का स्वरूप समाज में दिन–प्रतिदिन बदलता रहता है।

उर्मिला मिश्र ने आधुनिकता के बदलते स्वरूप को देखते हुए लिखा है कि– "आधुनिकता का जो स्वरूप कल था

वह आज हो, जो आज है, वह कल हो यह दावा नहीं किया जा सकता है।"[2] इसका प्रमुख कारण यह है कि यह जो समय चक्र है वह परिवर्तनशील है। वर्तमान पीढ़ी अपनी सभ्यता एवं संस्कृति से दूर होती चली जा रही है। समाज की संस्कृति, विकृत रूप में फैल रही है। यह इस इक्कीसवीं सदी के समाज की सबसे बड़ी चुनौती है। "नई पीढ़ी अपनी सभ्यता, संस्कृति से दूर होती जा रही है, यह बड़े दुःख की बात है। अपने देश को आगे बढ़ाने के लिए अपनी भाषा, संस्कृति ही काम आती है। गुरूदेव टैगोर कहते थे कि अगर विश्व को आगे बढ़ाना है तो एशिया और यूरोप की मिश्रित संस्कृति अपनानी होगी।"[3] बाजारीकरण के इस दौर में साहित्य, भाषा, संस्कृति, सभ्यता, शिक्षा, सभी बाजार के दुष्प्रभावों से मुक्त नहीं हैं। हिन्दी साहित्य आज अपने वास्तविक स्वरूप को खोता दिखाई दे रहा है। साहित्य की जो उत्कृष्ट रचनायें छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता तक देखने को मिलती हैं आज वह दुर्लभ हैं। ऐसा नहीं की आज साहित्य में रचनायें नहीं हो रही है अपितु यह केवल मात्रात्मक रूप में बढ़ा है, गुणात्मक रूप में नहीं। आज के हिन्दी पाठक अपना समय इंटरनेट के ब्लॉग एवं फेशबुक पर व्यतीत करते हुए दिखाई दे रहे है। वह लेखक की मूल रचना पढ़ने में कम ही रूचि ले रहे हैं। हिन्दी का प्रचार–प्रसार भले ही बढ़ा हो लेकिन उसकी गुणवत्ता में ह्रास ही हुआ है। साहित्यिक रचनाकारों में पद, प्रतिष्ठा, पुरस्कार, धन लोलुपता

प्रधान रूप में दिखाई दे रही है। "संस्कृत में साहित्य को पारिभाषित करते हुए लिखा था– 'साहित्यस्य भावः इति साहित्यः' अर्थात् जिसमें हित छिपा है वही साहित्य है।

आचार्य मम्मट ने काव्य के सन्दर्भ में कहा था– 'वाक्यम रसात्मकं काव्यम्' अर्थात् रस से युक्त वाक्य ही काव्य है। साहित्य और कविता में जो परिभाषाएं भारतीय वाङ्मय में दी थी आज के वैश्वीकरण के युग में उसी साहित्य पर बाजार की प्रचुर प्रभाव बना हुआ है। तमाम मानवीय संवेदनाओं अनुभूतियों और रागात्मक तत्वों का बाजारीकरण आज के युग की वीभत्स सच्चाईयाँ है।"[4] इस प्रकार हम देखते हैं कि भूमण्डलीकरण के इस युग में आज कबीर, सूर, तुलसी, जायसी, रसखान, भारतेन्दु, प्रेमचन्द, पंत, प्रसाद, निराला, महादेवी वर्मा, नागार्जुन, अज्ञेय जैसा साहित्य प्राप्त होना स्वप्न सा हो गया है। व्यक्ति के नैतिक मूल्यों में ह्रास हो रहा है एवं भाषा की अभिव्यक्ति कमजोर हो गयी है।

अतः साहित्य भी उसी दर्जे का हो गया है। कालजयी रचनायें मिलना मुश्किल सा हो गया है। "वैश्वीकरण के बाजारतंत्र ने साहित्य के सम्मुख नई चुनौती पेश कर दी है तब भारतीय रचनाकारों के सम्मुख प्रेमचन्द्र की कसौटी उनकी राह को रोशन कर सकती है। प्रेमचन्द्र ने लिखा– हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें उच्च चिन्तन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाईयों का प्रकाश हो, क्योंकि अब औरज्यादा सोना मृत्यु का लक्ष्य है। "[5] वास्तव में उच्च चिन्तन बिना उच्चकोटि का साहित्य हो ही नहीं सकता। वर्तमान हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श हाशिये पर है, आखिर क्यों? साहित्यकार हमेशा ही आपसी बहसों में उलझा रहता है जो यह एक प्रकार की साहित्यिक चुनौती है। साहित्य की इस चुनौती का सामाधान तभी सम्भव है जब साहित्यकार पूर्वाग्रह को अपनी मानसिकता से दूर रखे।

सभ्यता एवं संस्कृति का विकास मानव एवं समाज के विकास से ही सम्भव है। मनुष्य एक विचारशील प्राणी है, अतः वह हमेशा ही विकास के नये मार्गों को अपनाने का प्रयास करता रहता है। "संस्कृति मनुष्य की ही होती है, साहित्य का रचयिता भी मनुष्य ही है जो समाज में रहता है और श्रम करता है। मनुष्य को आदि अवस्था से लेकर आज तक की साहित्य, कला एवं सभ्यता तथा संस्कृति का सारा विकास मनुष्य और समाज के विकास का ही परिणाम है।"[6] अतः हम देखते हैं कि साहित्य, सभ्यता, कला एवं संस्कृति का विकास तभी सम्भव है जब मनुष्य का विकास हो। आज का मनुष्य भूमण्डलीकरण के इस युग में समस्त चीजों को एक साथ समेटने का प्रयास कर रहा है जो सम्भव नहीं है। अतः साहित्य में जरूरत है एक ऐसी स्वच्छंद मानसिकता की जिससे साहित्य की निर्मिति भी

स्वच्छंद रूप से हो सके।

मस्तिष्क में उत्पन्न होने वाले विचार जब अभिव्यक्ति की ओर बढ़ते है तब वह भाषा को अपना माध्यम बनाते हैं। यही माध्यम विचारों को अभिव्यक्ति करने का साधन बनता है जिसे हम भाषा कहते हैं। "भाषा शब्द संस्कृत के 'भाष्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है– 'कहना' या 'बोलना' अर्थात् भाषा वह है जिसे बोला जाय।"[7] भाषा समाज की सभ्यता, संस्कृति एवं अस्मिता की पहचान होती है। "भाषा किसी देश की अस्मिता का द्योतक होती है। भाषा अभिवयक्ति का माध्यम न होकर समूची संस्कृति को स्पष्ट करने की आईना भी होती है। भाषा न केवल विचारों के आदान–प्रदान का साधन भर है, अपितु वह पूरी की पूरी परम्परा की संवाहक होती है। किसी देश और राष्ट्र के स्वरूप तथा स्वाभिमान को अभिव्यक्ति देने का नाम भाषा है। भाषा देश के इतिहास एवं वर्तमान का वह आईना होती है, जिसमें भविष्य भी देखा जा सकता है।"[8] हिन्दी भाषा की अस्मिता से भारत देश की अस्मिता का गौरव जुड़ा हुआ है। क्योंकि यह वह भाषा है जिसमें भारत की अधिकांश जनसंख्या विचारों का सम्प्रेषण करती है।

भोलानाथ तिवारी ने भाषा के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि– "भाषा निश्चित प्रयत्न के फलस्वरूप मनुष्य में उच्चरणावयवों से निःसृत ध्वनि समष्टि होती है। इसका आशय यह है कि अन्य साधनों से अन्य प्रकार की ध्वनियों (जैसे– चुटकी बजाना, ताली बजाना आदि) से भी विचार–विनिमय हो सकता है, किन्तु वे भाषा के अन्तर्गत नहीं आती।"[9] अतः मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जो स्पष्ट रूप से विचारों को प्रकट करने के लिए भाषा का सहारा लेता है। आज विभिन्न भाषाओं के शब्दों का भाषा में अंधानुकरण प्रयोग हो रहा है। जिसका वास्तविक स्वरूप सामान्य जनता नहीं समझ पाती है लेकिन लोग उससे अपनी विद्वता को प्रकट करते हैं। इसी प्रकार के परदेशी भाषा के खतरे से आगाह करते हुए आधुनिक हिन्दी साहित्य के जनक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कहते हैं कि–

"अंग्रेजी पढ़ि के जदपि, सब गुन होत प्रवीन।

पै निज भाषा–ज्ञान बिन, रहत हीन के हीन।।"

अतः हमें वर्तमान परिप्रेक्ष्य में हिन्दी भाषा के ऐसे स्वरूप का प्रयोग करना है जिसे ग्रहण करने से प्रवीणता के साथ–साथ हीनता का गुण न आये। वैश्वीकरण के इस युग में हिन्दी की भाषायी चुनौतियों को स्वीकारते हुए रामधारी सिंह 'दिनकर' के इन बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है जिससे भाषा में आने वाली कमियों को दूर किया जा सके– "भाषा की शक्ति कठिन नहीं, आसान शब्दों के प्रयोग से निखरती है। भाषा को सौन्दर्य तब बढ़ता है, जब लेखक उन सभी शब्दों को सहानुभूति से देखता है जो जनता की जीभ पर चढ़े हुए है। कोई भी शब्द केवल इसीलिए ग्राह्य नहीं होता कि वह संस्कृत भंडार का है, न शब्दों का अनादर केवल इसलिए उचित है कि वे अरबी या फारसी के भंडार से आए हैं। जो भी शब्द प्रचलित भाषा में चल रहें, जो भी शब्द सुगम, सुन्दर और अर्थपूर्ण है, साहित्यिक भी उन्हीं शब्दों को लेकर काम करती है, यह विचार आज भी समीचीन समझा जाता है।"[10] इसलिए हमें भाषा में ऐसे ही शब्दों का प्रयोग करना चाहिए जो सर्वग्राह्य हो। निश्चित रूप से भाषा विचार–विनिमय का सबसे योग्य साधन मानी जाती है।

लेनिन ने भाषा को मानवीय सम्पर्क का सबसे महत्वपूर्ण साधन माना है। प्रत्येक भाषा की अपनी जीवन्तता होती है, प्रवाह होता है जिसे हमें बनायें रखना होगा तभी हम उस भाषा को सही रूप प्रयोग कर सकते है। हिन्दी को भारत की राजभाषा के रूप में स्वीकार किया जा रहा है। यह राष्ट्र की आत्मा का रूप है। इसमें बोलने से माँ के आँचल में लिपटे रहने जैसा सुख प्राप्त होता है। विश्व के सारे शिक्षाशास्त्री इस बात से सहमत है कि शिक्षा का प्रारम्भिक माध्यम मातृभाषा ही होना चाहिए। किंतु भारतीय समाज में विदेशी भाषा माध्यम को थोपने की सिलसिला लगातार बढ़ता ही जा रहा है। हिन्दी, संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश की उत्तराधिकारिणी है। जिससे उसकी महत्ता बनी हुई

है। लेकिन आज साहित्य में भाषा के ऐसे रूप प्रयोग हो रहा है जो समाज के सामने एक चुनौती बन गया है। ''1980 और 1990 के दशक में भारत में उदारीकरण तथा औद्योगिकीकरण प्रक्रिया तीव्र हुई। इसके परिणाम स्वरूप अनेक विदेशी बहुराष्ट्रीय, कंपनियां भारत में आई तो हिन्दी के लिए एक खतरा दिखाई दिया था, क्योंकि वे अपने साथ अंग्रेजी लेकर आई थी।''[11] स्वतंत्रता काल में हिन्दी ही एक ऐसी भाषा रही जो सम्पूर्ण जनमानस में क्रान्ति का बिगुल बजाया। इस दौरान हिन्दी भाषा के विकास में केवल हिन्दी भाषी ही नहीं अपितु गैर हिन्दी भाषी भी पूरा–पूरा सहयोग दिये। स्वतंत्रता काल में गैर हिन्दी भाषी देशभक्तों में सर्वप्रमुख स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गाँधी, दयानंद सरस्वती, सुभाष चन्द्र बोस, रवीन्द्र नाथ टैगोर, भगत सिंह एवं सी राजगोपालाचारी आदि थे।

जिस प्रकार भारत की प्रमुख विशेषता विविधता में एकता है उसी प्रकार हिन्दी भाषा की भी प्रमुख विशेषता अनेकता में एकता है। इस भाषा के भीतर रूसी, स्पेनिश, अरबी, फारसी, पुर्तगाली, तुर्की, अंग्रेजी, जापानी आदि भाषा के शब्द समाहित हैं। लेकिन हिन्दी भाषा को सबसे बड़ा खतरा केवल अंग्रेजी भाषा से है। ''हमारे अनेक युगान्तकारी साहित्यकार अपनी वाक्य रचना में अंग्रेजी शब्दों की ऐसी भरमार करते हैं। मानो हिन्दी में सोचना उन्होंने बन्द कर दिया है। वे न हिन्दी में सोचते है न अंग्रेजी में वरन् इन दोनों से मिली हुई एक नई इंग्लिस्तानी भाषा में जो उनके लिए बहुत स्वाभाविक है किन्तु जो देश की जनता के लिए हमारे समग्र सामाजिक विकास के लिए घातक है।"[12] यहाँ हम पाते है कि सामाजिक विकास भाषा के साथ जुड़ा हुआ है। आधुनिक सभ्यता का ह्रास एवं विकास भी भाषा के गम्भीर रूप से जुड़ा हुआ है। सुमित्रा नंदन पंत ने सभ्यता के विकास पर अध्ययन करते हुए लिखा है कि– ''विश्व की सभ्यता के विकास तथा ह्रास के साथ बाकी का भी युगपत विकास तथा ह्रास होता है। भिन्न–भिन्न भाषाओं की विशेषताएं, भिन्न–भिन्न जातियों तथा देश की सभ्यताओं की विशेषताएं है।''[13] अतः देश की जैसी सभ्यता होगी उसी प्रकार उसकी भाषा भी होगी। भौगोलिक परिवेश के साथ भाषा भी परिवर्तित होती रहती है। वैश्विक स्तर पर हिन्दी भाषा का प्रचार–प्रसार एवं प्रयोग तेजी से बढ़ा है।

आज यह केवल भारत में ही नहीं अपितु त्रिनिदाद, टोबैगो, मारीशस, फीजी, सूरीनाम, नेपाल आदि देशों में बोली एवं प्रयोग की जा रही है। लेकिन फिर भी हिन्दी भाषा की गुणवत्ता में कमी आई है। भले ही अंग्रेजी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में स्थान पा चुकी है लेकिन हमारा वास्तविक विकास स्वयं की भाषा से ही सम्भव हो सकता है किसी परदेशी भाषा से नहीं। आज का व्यक्ति स्वयं की भाषा बोलने में शर्म महसूस करता है, लेकिन अंग्रेजी भाषा बोलने में उसे गर्व की अनुभूति होती है कैसी शर्म की बात है, हिन्दी भाषा पर चिंता करते हुए फॉदर कामिल बुल्के ने लिखा कि– ''हिन्दी भाषा इतनी समृद्ध और सक्षम है कि सारा काम, काज सुचारू रूप से हिन्दी में किया जा सकता है। यह खेद की बात है कि हिन्दी भाषियों में भाषा के प्रति स्वाभिमान नहीं जागा अन्यथा बहुत पहले हिन्दी देशव्यापी स्तर पर प्रचलित हो गई होती।''[14] अतः हमें अपनी भाषा के जातीय रूप की रक्षा करनी चाहिए।

साहित्य में अंग्रेजी के अन्धाधुंध प्रयोग से हिन्दी साहित्य की भाषायी अस्मिता पर एक प्रश्न चिन्ह लगा हुआ है जिसे हिन्दी के अधिक से अधिक प्रयोग द्वारा हटाया जा सकता है। हिन्दी भाषा की इस चुनौती को स्वीकार करते हुए उसकी समस्या के समाधान हेतु आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते है कि– ''भाषा को हमें स्वतंत्र, स्वाधीन चिन्तन की भाषा बताने की आवश्यकता है। दूसरी भाषाओं की जो अच्छी–अच्छी चीजें लिख ली गयी हैं और जो अच्छे ज्ञान की वस्तुएँ उपलब्ध हैं, जब तक उनका अध्ययन नहीं करते तब तक उनका विस्तार नहीं होगा। चित्त के विस्तार हुए बिना जो लिखेंगे वह मुर्दा चीज होगी, लेकिन इन दोनों ही अवस्थाओं में से हमें मध्यम भाग लेना है। हमें इसका अध्ययन भी करना है। महान ग्रंथों को समझना है, हमारी भाषाओं के विचारकों के भावों और अनुभूतियों को आत्मसात करना है और फिर अपने ढंग से अपनी भाषा का रूप देना है यही हमारी प्रमुख आवश्यकता है।"[15] अतः हमें अपनी भाषा के साथ–साथ दूसरी भाषाओं का भी अध्ययन करना चाहिए जिससे उस भाषा की उत्कृष्ट कोटि

की रचनाओं को स्वयं की भाषा में अनुवादित, व्याख्यायित किया जा सके जिससे वे सर्वसुलभ हो सकें। हिन्दी लोक सिद्ध भाषा के रूप में भी प्रसिद्ध हैं क्योंकि यह जनमानस में तेजी से प्रचारित–प्रसारित होती है इसका सर्वप्रमुख कारण सर्वग्राह्यता है। हिन्दी की भाषायी अस्मिता पर आज भले ही प्रश्नचिन्ह लगे हैं, लेकिन उसकी प्रायोगिकता कम नहीं हुयी है।

''सभ्यताओं के संघर्ष, अस्मिताओं की टकराहट, विखंडनवाद मूल्यों और मान्यताओं के विघटन, वैश्विक बाजारवाद व भाषाओं के मरने की चिंता के इस त्रासद काल में भी हिन्दी की अपनी अस्मिता पर प्रश्नचिन्ह नहीं लग सकता है, बल्कि इसकी भाषिक संस्कृति वैश्विक फलक पर विस्तार पा रही है, कारण यह है कि यह लोकसिद्ध भाषा है।''[16] निश्चित रूप से लोक सिद्ध भाषा का यह रूप सम्पूर्ण जनमानस में फैला हुआ है। जिससे समाज में उसका प्रचार–प्रसार हो रहा है।

हिन्दी का वर्तमान परिदृश्य आधुनिकता की आँधी में ऐसे डूब गया जिससे उसकी साहित्यिक एवं भाषायी अस्मिता पर प्रश्न चिन्ह लग गया है। अतः इस समस्या के समाधान हेतु हमें आपनी सभ्यता, संस्कृति भाषा में वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सुधार लाना परम आवश्यक हो गया है। इस प्रकार इक्कीसवीं सदी के इस युग में आधुनिक सभ्यता के समक्ष साहित्यिक एवं भाषायी चुनौतियों के समाधान हेतु हिन्दी नवजागरण के अग्रदूत भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की इन पंक्तियों पर ध्यान देना आवश्यक हो गया है–

"निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।

बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटै न हिय को शूल।।"

***व्याख्याता**
हिन्दी विभाग
बी.बी.डी. राजकीय महाविद्यालय,
चिमनपुरा, (शाहपुरा)

संदर्भ सूची

1. रामधारी सिंह 'दिनकर', आधुनिकबोध, पंजाबी बुक भंडार, नई दिल्ली, सन् 1973, प्रथम संस्करण, पृ.– 36
2. उर्मिला मिश्र, आधुनिकता और मोहन राकेश, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ.– 01
3. आजकल, सितम्बर 2006, वर्ष 62, अंक 5, नई दिल्ली, पृ.– 20
4. परिकथा, वर्ष 01, अंक 01, मार्च–अप्रैल 2006, पृ.– 9–11
5. वही, पृ.– 9–11
6. शिकुमार मिश्र, दर्शन साहित्य और समाज, पीपुल्स लिटरेसी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण– 1981, पृ.– 15
7. भोलानाथ तिवारी, भाषा विज्ञान, किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण– 2000, पृ.– 02
8. http://www.srijangatha.com/hindiwishw3_sep2k7

9. भोलानाथ तिवारी, भाषा विज्ञान, किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2000, पृ.– 02
10. रामधारी सिंह 'दिनकर' संस्कृति के चार अध्याय, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण– 2010, पृ.– 325
11. शोध समीक्षा और मूल्यांकन, जनवरी– 2013, VOL-V पृ.– 73
12. रामविलास शर्मा, भारत की भाषा समस्या, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण– 2003 पृ. 196
13. सुमित्रा नंदन पंत, पल्लव, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, नौवां संस्करण– 1993, पृष्ठ– 26
14. आजकल, सितम्बर 2007, वर्षः 63, अंक 5, नई दिल्ली, पृ.– 29
15. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, भाषा साहित्य और देश, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, चौथा संस्करण, पृष्ठ– 22
16. आजकल, सितम्बर 2007, वर्ष 63, अंक 5, नई दिल्ली, पृ.– 14